ऋषि जीवन

अप्रैल - २००६

श्रीभगवान भजनाश्रम, वृन्दांवन द्वारा प्रकाशित

भज मन कृष्ण कन्हैया

तेरी पार करेंगे नैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।
निशिदिन भज गोपाल पियारे, मोर मुकुट पीताम्बर धारे।

भक्तों के रखवैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।

स्वाँस स्वाँस भज नन्द दुलारे, वोही बिगड़े काम सम्हारे।
नटवर चतुर रिझैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।

ग्वाल बाल संग धेनु चरावै, लूट-लूट दधि माखन खावै।
काली नाग नथैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।
अर्जुन के हित रथ को हाँका, साँवलिया गिरधारी बाँका।

भारत युद्ध जितैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।
भक्त सुदामा तन्दुल लाये, गले लगाकर भोग लगाये।

कहकर भैया-भैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।

भरी सभा में द्रोपदी रोई, अवला को दे शरण न कोई।
पहुँचे चीर बढ़ैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।
वन में एक शिला थी भारी, चरण छुवाय अहिल्या तारी।

ऐसे स्वर्ग पठैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।
संकट से प्रह्लाद उवारो, खम्ब फारि हिरण्याकुश मारो।

नरसिंह रूप धरैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।

आरत हो गजराज पुकारा, मैं हूँ भगवन दास तुम्हारा।
पहुँचे गरुड़ चढ़ैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।

दीनानाथ सर्व हितकारी, संकट मोचन कृष्ण मुरारी।
जन के यह रखवैया, भज मन कृष्ण कन्हैया।।

[illegible] शर्मा, एम०ए०, बी०एस-सी। ☎ (०५६५) २४४३३२२, २४४२३४८
[illegible] वृन्दावन ☎ (०५६५) २४४२३४१ के लिए प्रकाशक, मुद्रक-श्रीराज पाटोदिया
[illegible] प्रेस, [illegible], वृन्दावन ☎ (०५६५) २४४२९७१ से मुद्रित।

❀ श्रीहरिः ❀
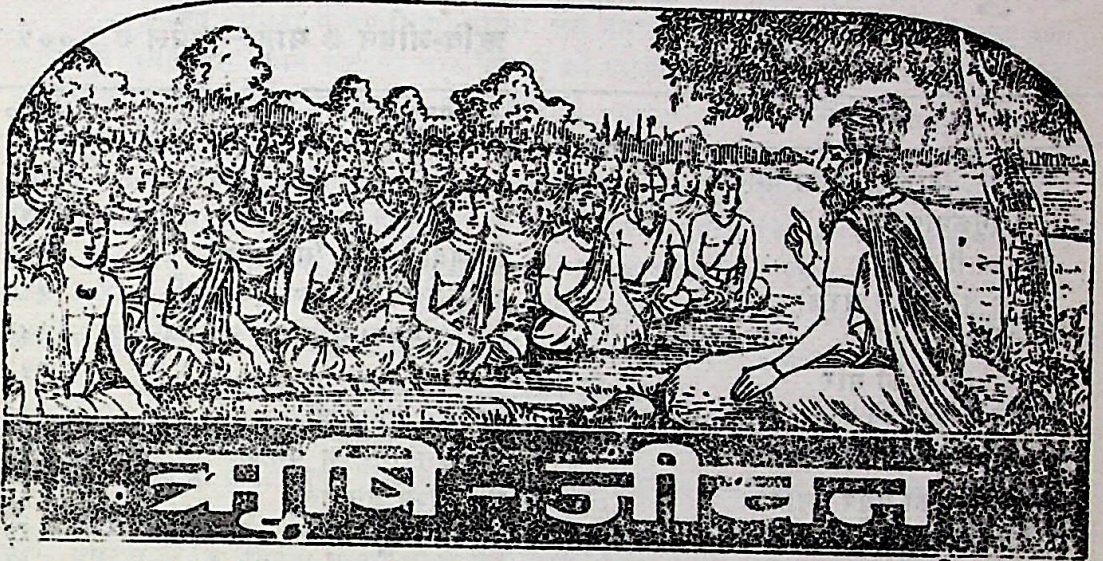
वर्ष—६८ अङ्क—४

ऋषि-जीवन कार्यालय द्वारा श्रीभगवान भजनाश्रम
पो० वृन्दावन (मथुरा)
माह—अप्रेल, २००५

वार्षिक मूल्य ३५)
आजीवन १५ वर्ष-५०१)

श्री बिहारी जू खेलत बसन्त

श्री बिहारी जू खेलत बसन्त ।
रङ्ग भरी सब सखी बिराजित राधे जू रूप लसन्त ।।
फूले जीवन मोर मञ्जरी अधर पान उलहन्त ।
आयौ मदन मानौ सैन साजिकै चँवर चिकुर ढुरन्त ।।
छूटत मूक झूक सौरभ की नयन गुलाल उड़न्त ।
कूजत मधुकर मञ्जीर कोविला बाजे बजत अनन्त ।।
मच्यौ है परस्पर खेल कुटाक्षनि क्रीड़त भामिनि कुन्त ।
श्रीरसिकबिहारी कौ सुख निरखत धीरज कौन धरन्त ।।

●●●

अनुक्रमणिका

ऋषि-जीवन * माह—अप्रैल * २००५

अपनी बात

असंख्य योनियों में घूमती हुई आत्मा जब मनुष्य योनि में अपने कर्मानुसार जन्म लेती है तो उसे भली भाँति अपने कर्त्तव्यों और उद्देश्यों को समझ लेना चाहिये। जिन परात्पर ब्रह्म की अहैतुकी कृपा वर्षण से यह मनुष्य देह प्राप्त होती है, वस्तुतः इसका परम कर्त्तव्य उन्हीं प्रभु की सेवा, सुश्रूषा, भजन, कीर्त्तन, गुणानुवाद आदि कर्मों में विशेष रूप से अपने को लीन करना चाहिये। प्रभु की भक्ति के नौ प्रकारों का शास्त्रों में विशद् विवेचन पढ़ने को मिलता है। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार मनुष्य किसी भी प्रकार से उनकी सेवा करके अपना जीवन धन्य कर सकता है। प्रभु ने मनुष्य को विवेक, बुद्धि, प्रेम जैसे अनेक उपहार सात्त्विक वृत्ति से जीवन यापन करने के लिए माध्यम रूप में प्रदान किये हैं। अब यह उसी का कर्त्तव्य बनता है कि वह इनका उपयोग किस रीति से करता हुआ उनकी प्रीति का पात्र बन पाने में सफल होता है।

अब विचारणीय यह है कि मनुष्य अपने कर्म-कौशल तथा विवेचनात्मक बुद्धि के द्वारा यह जाने कि वह अलौकिक प्रेम क्या है जिसके द्वारा भगवान भी उसके वश में होकर वही करते हैं जो भक्त चाहता है अतः अपने क्रिया-कलाप मनुष्य को इस प्रकार रखने चाहिये कि उसके द्वारा जो कुछ भी किया जावे वह सत् हो असत् नहीं, कार्य वैध हो अवैध नहीं, वह हेय न होकर विधेय हो। ऐसा न हो कि मिथ्या विषय-भोगों में संलिप्त होकर अपने विवेक का ही होम कर डाले। मनुष्य अपना गन्तव्य निश्चित कर लेने के उपरान्त ही उसकी ओर अग्रसरित हो। कहीं माया की चकाचौंध में आकर मिथ्या भ्रमजालों में फँसकर अपना भविष्य ही अन्धकारमय न हो जावे। इसके लिए अपने विवेक का उपयोग सतर्कतापूर्बक सदैव करना मानव के लिए परम अभीष्ट है।

हमारे मनीषियों ने भगवत्प्राप्ति के अनेक अनुभूत उपाय बताये हैं, जिनके अनुसरण से साध्य वस्तु की प्राप्ति सम्भव है। परन्तु साधना करना साधक का कार्य है। इस साधना मार्ग में सर्व प्रथम तीव्र सम्वेग आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि हृदय जनित सम्पूर्ण वासनाओं का होम करने के लिए हृदय में वेदी बनाई जावे। तदुपरान्त आवश्यक है आत्मीयता की आहुतियों के रूप में एकाग्रता के योग की, और अन्त में एक प्रेम चिनगारी सुलगा देने की। इस प्रयोग में सतत् प्रयत्नशील रहते हुए अभ्यास करते रहना और फिर हृदय के कपाटों को खोलो और अनुभव करो कि प्रभु इस मन-मन्दिर में पधारे हैं कि नहीं ? यदि हैं तो जीवन की चिर अभिलाषित आकांक्षा की पूर्ति हो गई और नहीं तो पुनः-पुनः इस अभ्यास को उत्तरोत्तर बढ़ाते जाने की चेष्टा करते रहो और जब प्रभु पधारने की कृपा करते हैं तो समझो कि—

नैनों की करि कोठरी पुतली पलँग बिछाय।

पलकों की चिक डार कै प्रभु को लिया रिझाय॥

विष्णुदान शर्मा, एम. ए.

सम्पादक

सन्त सभा में अरजी

लेखक—ब्रज किशोर दास 'किशोर'

•★•

हमारी ऐसहिं आयु विहानी ।
खेल-कूद में गयो बालपन; बिषयन बीच जवानी ॥
अब तो देह बुढ़ानी दिन दिन, बढ़ि रही रोग कहानी ।
मुरत न मन तऊ भजत भजन ते, मचि रही खींचातानी ॥
बूड़ौ जात हाय भव जलनिधि, सुनै को आरत बानी ।
लेहु बचाय सन्त सब अब तो, जन किशोर निज जानी ॥

दीख्यौ जब अवलम्ब नहिं, कहुँ कहुँ थोर किशोर ।
सन्त सभा में अरज तब, कियो पेश कर जोर ॥

चलु चित श्री वृन्दावन धाम ।
जहँ की धूरि मूरि सब सुख की, कण कण शालिगराम ॥
कुञ्ज कुञ्ज गुञ्जत जहँ रस निधि, राधा राधा नाम ।
तजि सब महत् वृन्द दूरहिं ते, सपदि सेउ सोइ ठाम ॥
यम भय हर रसराज रूप जहँ, बहरविजा अभिराम ।
सरि, सर, शैल, लता, द्रुम, खग, मृग, सबमें श्यामा श्याम ॥
देखत दुरत दुरित दल दूरहिं, मिलत परम विश्राम ।
सेवत दिन जेहिं सगन प्रीति युत, अगनित रति अरु काम ॥
जहँ रसौघ सत्तारणि अद्भुत, दिव्य निधानि ललाम ।
राधाभिधान लहि धन 'किशोर' सोइ, भयो है पूरन काम ॥

रसिकन की पद रज सने, सुमिरहु श्यामा श्याम ।
और न ठौर 'किशोर' तोहि, वृन्दावन विश्राम ॥

गीता

—स्वामी रामसुखदास जी महाराज

★

प्रश्न—भगवान् ने गीता, युद्ध के समय ही क्यों सुनायी ?

उत्तर—यह बताने के लिये कि युद्ध जैसा घोर कर्म करते हुए भी मनुष्य कल्याण को प्राप्त हो सकता है ! तात्पर्य है कि साधन किसी भी परिस्थिति विशेष की अपेक्षा नहीं रखता । वह प्रत्येक परिस्थिति और अवस्था में हो सकता है । कारण कि परमात्मा प्रत्येक परिस्थिति में ज्यों का त्यों विद्यमान है । अतः वह प्रत्येक परिस्थिति में प्राप्त किया जा सकता है ।

प्रश्न—गीता का सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ क्यों माना गया है ?

उत्तर—कारण कि वह सिद्धान्त स्वयं भगवान का है, ऋषि-मुनियों का नहीं ! भगवान ऋषि - मुनियों के भी आदि हैं—"अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः" (गीता १० । २) । वास्तव में भगवान का सिद्धान्त ही "सिद्धान्त" कहने लायक है । अन्य दार्शनिकों का सिद्धान्त वास्तव में 'सिद्धान्त' नहीं है, अपितु 'मत' है ।

प्रश्न—भगवान ने रामायण में कहा है कि—"मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ।।" (अरण्य० ३६ । ५) अर्जुन ने तो भगवान के विश्व रूप, चतुर्भुज रूप और द्वि-भुज रूप—तीनों के दर्शन कर लिये थे, फिर भी उनका मोह दूर क्यों नहीं हुआ ?

उत्तर—दर्शन देने के बाद मोह दूर करने की जिम्मेवारी भगवान की होती है । अर्जुन का मोह आगे चलकर नष्ट हो ही गया था—"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" (गीता १८ । ७३) । इससे सिद्ध हुआ कि दर्शन के बाद मोह नष्ट होता ही है । परन्तु अर्जुन ने मोह नष्ट होने में न तो गीता-श्रवण को और न दर्शन को ही कारण माना है, प्रत्युत भगवान की कृपा को ही कारण माना है—"त्वत्प्रसादान्मयाच्युत" ।

प्रश्न—गीता में श्रेष्ठ पुरषों के आचरण की मुख्यता बतायी है—"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः" (३ । २१) और भागवत में वचन की मुख्यता बतायी है—"ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्" (१० । ३३ । ३२) । दोनों में कौन-सी बात मानें ?

उत्तर—गीता में तो संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति बतायी है कि—श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही अन्य लोग भी करते हैं । परन्तु वास्तव में कर्तव्य-अकर्तव्य के विषय में वचन को प्रमाण मानना श्रेष्ठ है । इसलिये इतिहास की अपेक्षा विधि को और विधि की अपेक्षा निषेध को प्रबल माना गया है ।

श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का स्वाभाविक ही दूसरे पर असर पड़ता है, चाहे हम देखें या न देखें । परन्तु जहाँ उनके आचरण और वचनों में विरोध दीखे, वहाँ पर उनके आचरण न देखकर उनके वचनों का ही पालन करना चाहिये । कारण कि उन्होंने किस परिस्थिति में क्या किया, इसका पता नहीं लगता ।

प्रश्न—असत् की सत्ता ही नहीं है—"नासतो विद्यते भावः" (गीता २ । १६), फिर प्रकृति को अनादि क्यों कहा है—"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि" (गीता १३ । १९) ? अनादि कहने से यह भाव निकलता है कि प्रकृति की सत्ता है ?

उत्तर—अज्ञानी को समझाने के लिये अज्ञानी की ही भाषा बोलनी पड़ती है। हम प्रकृति की सत्ता मानते हैं, इसलिये शास्त्र हमारी भाषा में ही कहते हैं। वास्तव में प्रकृति की सत्ता है ही नहीं। परन्तु जिनकी दृष्टि में प्रकृति की सत्ता है उनके लिये प्रकृति को अनादि कहा गया है। प्रकृति अनादि होते हुए भी अनन्त नहीं है, प्रत्युत सान्त (अन्त वाली) है।

दृष्टि भेद से दर्शन अनेक हैं, तत्त्व एक है। जहाँ द्रष्टा, दृष्टि और दृश्य नहीं है, वहाँ भेद नहीं है। द्रष्टा, ज्ञाता, दार्शनिक, दर्शन जब तक हैं, तब तक कोई भेद है। इनसे आगे तत्त्व में भेद नहीं है।

प्रश्न—गीता ने प्रकृति को अनादि तो कहा है, पर अनन्त या सान्त नहीं कहा है, ऐसा क्यों ?

उत्तर—अगर प्रकृति को अनन्त (नित्य) कहें तो ज्ञान का खण्डन होता है; क्योंकि ज्ञान की दृष्टि से प्रकृति की सत्ता ही नहीं है—'नासतो विद्यते भावः" (गीता २ । १६)। अगर प्रकृति को सान्त (अनित्य) कहें तो भक्ति का खण्डन होता है; क्योंकि भक्ति की दृष्टि से तो प्रकृति भगवान की शक्ति होने से भगवान से अभिन्न है—'सदसच्चाहम्' (गीता ९ । १९)। अतः भगवान ने ज्ञान और भक्ति—दोनों की बात रखने के लिये ही प्रकृति को न अनन्त कहा है और न सान्त कहा है, प्रत्युत अनादि कहा है।

प्रश्न—भगवान ने गीता में कहा है कि अगर मैं कर्तव्य का पालन नहीं करूँगा तो लोग भी अपने कर्तव्य से विमुख हो जायेंगे, इसलिये मैं भी कर्तव्य का पालन करता हूँ (३ । २२ - २४)। फिर आज-कल लोग अपने कर्तव्य का पालन क्यों नहीं करते ?

उत्तर—भगवान की बात उन लोगों के लिये है, जो भगवान को मानने वाले (आस्तिक) हैं। कारण कि भगवान के कर्तव्य-पालन का असर उन्हीं लोगों पर पड़ेगा, जो भगवान पर श्रद्धा एवं विश्वास रखते हैं। जो भगवान को नहीं मानने, उन पर भगवान के कर्तव्य-पालन का असर नहीं पड़ेगा। जिनकी विपरीत बुद्धि हो रही है, वह भगवान की कृपा को क्या समझें ?

प्रश्न—गीता में भगवान ने कहा हैं—"सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च" (१० । ४)। "अभय" दैवी सम्पत्ति है, और "भय" आसुरी सम्पत्ति, फिर दोनों भगवान के स्वरूप कैसे हुए ?

उत्तर—दैवी सम्पत्ति भी भगवान का स्वरूप है और आसुरी सम्पत्ति भी भगवान का स्वरूप है। अभय भी भगवान का स्वरूप है और भय भी भगवान का स्वरूप है। वास्तव में तत्त्व एक ही है, पर हमारी कामना (भोगेच्छा) के कारण दो विभाग हो जाते हैं।

भगवान के विराट् रूप में भयभीत भी दीखते हैं—"रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति" (गीता ११ । ३६), "केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणान्ति" (गीता ११ । २१)। भयभीत भी विराट् रूप का ही अङ्ग है। तात्पर्य है कि भयभीत होने वाले भी भगवान हैं और जिनसे भयभीत हो रहे हैं, वे भी भगवान ही हैं।

मनुष्य सुख चाहता है, दुःख नहीं चाहता है। तभी दो विभाग हुए हैं, और शास्त्रों ने भी दो विभागों (दैवी-आसुरी, शुभ-अशुभ, विहित-निषिद्ध आदि) का वर्णन किया है। भेद के मूल

में भोगेच्छा ही हैं। सम्पूर्ण दुःख, सन्ताप, अनिष्ट आदि भोगेच्छा के कारण ही हैं। भोगेच्छा सर्वथा मिटने पर मोक्ष ही है।

प्रश्न—भगवान में मन लगाना करणसापेक्ष साधन है, जिसमें योगभ्रष्ट होने की सम्भावना रहती है। फिर गीता में भक्त के द्वारा मन लगाने की बात क्यों आयी है—"मन्मना भव" (गीता ९। ३४, १८। ६५)?

उत्तर—वास्तव में भक्त स्वयं लगता है, मन नहीं लगाता। मन लगाकर स्वयं लगना करण-सापेक्ष है, पर स्वयं लगकर मन स्वतः लग जाना करण निरपेक्ष है। भक्त मन लगाकर स्वयं नहीं लगता। वह स्वयं लगता है (मद्भक्तः), फिर उसके मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ भी अपने आप ही लग जाते हैं।

प्रश्न—गीता ने संसार को असत् तो कहा है, पर रज्जू में सर्प की तरह अध्यस्त नहीं कहा है। क्या कारण है?

उत्तर—रस्सी में सर्प तो बोध होने के बाद नहीं दीखता, परन्तु संसार बोध होने के बाद भी दीखता है। आसक्ति (दोष) कर्त्ता में है, परन्तु दीखती है संसार में। अपने राग के कारण ही रुपयों में आकर्षण (लोभ) होता है। राग न रहने पर रुपये तो वैसे ही दीखते हैं, पर आकर्षण नहीं रहता। इसी तरह भोगों की आसक्ति न रहने पर संसार तो दीखता है, पर उसमें आक-र्षण नहीं होता।

वास्तव में संसार अध्यस्त नहीं है, प्रत्युत उसका सम्बन्ध अध्यस्त है। संसार आसक्त को भी दीखता है और विरक्त को भी, परन्तु आसक्त को ठोस दीखता है, विरक्त को पोला। जो कि है नहीं, पर दीखता है, वह अध्यस्त होता है। परन्तु संसार जैसा है, वैसा ही दीखता है, परन्तु उसका सम्बन्ध (राग) नहीं रहता। ज्ञानी महापुरुष को सोने की मुहर, मुहर रूप से ही दीखती है, पत्थर रूप से नहीं दीखती, परन्तु उसमें उसका राग नहीं होता। तात्पर्य है कि संसार की सत्ता बाधक नहीं है। प्रत्युत राग पूर्वक जोड़ा गया सम्बन्ध बाधक है। वैराग्य वस्तु की सत्ता का नाश नहीं करता, प्रत्युत राग का नाश करता है, राग पूर्वक सम्बन्ध बाँधने वाला है। संसार दुःख-दायी नहीं है, उसका सम्बन्ध दुःखदायी है।

प्रश्न—रज्जू में सर्प दीखना "निरुपाधिक भ्रम" है। और दर्पण में मुख दीखना "सोपाधिक भ्रम" है। क्या संसार के दीखने को "सोपाधिक भ्रम" मान सकते हैं; क्योंकि भ्रम मिटने पर भी दर्पण में मुख तो दीखता ही है?

उत्तर—सोपाधिक भ्रम भी नहीं मान सकते; क्योंकि दर्पण में मुख दीखता है, पर वह काम में नहीं आता, अर्थात् उससे व्यवहार नहीं होता। परन्तु संसार में राग मिटने पर भी व्यवहार तो होता ही है।

प्रश्न—गीता में आया है कि योग भ्रष्ट पुरुष शुद्ध श्रीमानों के घर में जन्म लेता है, अथवा योगियों के कुल में जन्म लेता है (गीता ६। ४१-४२)। परन्तु जड़ भरत ने हरिण योनि में जन्म लिया। अतः वे कौन से योग भ्रष्ट थे?

उत्तर—उनको योग भ्रष्ट नहीं कह सकते। कारण कि योग भ्रष्ट अपना साधन पूरा करने के लिये शुद्ध श्रीमान् के घर में अथवा योगी के घर में जन्म लेता है, और वहाँ पहले किये हुए साधन में पुनः लगता है। परन्तु जड़ भरत ने न तो श्रीमान् के घर में जन्म लिया और न योगी के कुल में ही जन्म लिया, प्रत्युत हरिण योनि में जन्म लिया। उन्होंने हरिण योनि में कोई साधन भी नहीं किया। अतः वे योग भ्रष्ट नहीं थे, पर

अन्त समय में हरिण की तरफ वृत्ति जाने से उनको पुनः जन्म लेना पड़ा।

प्रश्न—भगवान ने गीता में कर्मयोग (साधन) को अव्यय कहा है—"इमं विवस्वते योगं प्रोक्त-वानहमव्ययम्" (गीता ४। १)। अव्यय अर्थात् नित्य तो साध्य है, साधन नित्य कैसे ?

उत्तर—साधक ही साधन होकर साध्य में लीन होता है। अतः साधक, साधन और साध्य—तीनों ही तत्त्व से नित्य हैं। साधक, साधन और साध्य—तीनों एक ही हैं, परन्तु मोह के कारण अलग-अलग दीखते हैं। तीनों नित्य हैं, पर मोह अनित्य है—"नष्टो मोहः" (गीता १८। ७३)

प्रश्न—भगवान ने गीता में स्वयं (आत्मा) को "शरीरी" (शरीर वाला) और "देही" (देह वाला) कहा है, इससे सिद्ध हुआ कि स्वयं का शरीर के साथ सम्बन्ध है ?

उत्तर—स्वयं का शरीर के साथ किञ्चिन्मात्र भी सम्बन्ध न कभी था, न है, न होगा, और न होना सम्भव ही है। परन्तु भगवान ने साधकों को समझाने की दृष्टि से स्वयं को "शरीरी" अथवा "देही" नाम से कहा है। "शरीरी" कहने का तात्पर्य यही बताना है कि तुम शरीर नहीं हो। स्वयं परमात्मा का अंश है—"ममैवांशो जीवलोके" (गीता १५। ७) और शरीर प्रकृति का अंश है— "मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृति - स्थानि" (गीता १५। ७)। शरीर प्रतिक्षण नष्ट होने वाला और असत् है। ऐसे असत् शरीर को लेकर स्वयं शरीरी (शरीर वाला) कैसे हो सकता है ? अतः साधक स्वयं शरीर भी नहीं है और शरीरी भी नहीं है।

उपासना कौ सार

श्रीकुञ्जबिहारी सर्वसु सार ।
श्रीस्वामी हरिदास उद्धरे, रसिक-अनन्यनि कौ आधार ॥
नित्य प्रगट गावत लहि पावत, सब श्रुति-तत्त्व विचार ।
इहि निज नाम, धाम, वृन्दावन, निरनैं नित्यबिहार ॥
काम-केलि-रस और न परसत, प्रेम-समुद्र अपार ।
नित नव-यौवन-जोर, किसोर-किसोरी कण्ठ-सिंगार ॥
मत्त मुदित सहचरि सेवत नित, लता ललित आगार ।
जानत सर्व जगत ज्यौं जुवती, छुवत न भै भूप भण्डार ॥
जनम-करम पूरन प्रभु के सब, आस-पास-परिवार ।
अंस-कला सब अवतारित कौ, अवयारो भरतार ॥
श्रीकृष्ण-चरित त्रिधा त्रिभुवन, बहु भक्ति-भेद बिस्तार ।
जहाँ जु रस तहाँ तहीं वैस, मुख देत सबनि उदार ॥
गाय-ग्वाल-गोपी-गोपी-जन, न्यारौ ब्रज-ब्यौहार ।
सबतें दूरि दुर्यो दुर्लभ, क्यों सुलभ होत सुकुमार ॥
जो चाहै चित दै निज महलनि के अंग-संग अनुसार ।
श्रीबिहारीदास जे यह मत भावत तिनकौं वार न पार ॥

गताङ्क से आगे—

सहज धर्म का पालन करना ही आज का युग धर्म है

—पूज्य सन्त श्री नागर जी

★

आत्मा का सहज धर्म है अपने प्रियतम प्राणपति परमेश्वर से मिलन-सम्मिलन। शरीर का सहज धर्म है, शरीर के रिश्तेदारों, नातेदारों, मित्रों एवं संसार के समस्त प्राणियों के प्रति जैसा ईश्वर अवसर दे एवं शक्ति दे वैसा-वैसा कर्त्तव्य और धर्म पालन करना, जैसी बन सके सबकी सेवा और मदद करना, भगवान की भक्ति करना मन का सहज धर्म है। उसे संसार की चकाचौंध एवं विषय भोगों से परे अपने प्रियतम प्राणपति परमेश्वर की भक्ति भजन में लगाना चाहिये।

बुद्धि का परम धर्म है वह सबके कल्याण की भावना के सभी कार्य करे। मन को शरीर को नियन्त्रित करके हमें सत्-असत् का, शुभ-अशुभ का, उचित-अनुचित का तथा प्रत्येक कर्म में धर्म-अधर्म का शुद्ध विवेक और बोध प्रदान करे।

अन्तःकरण का सहज धर्म है कि सदैव शुद्ध एवं पवित्र बना रहे तथा भगवान की शुद्ध प्रेमाभक्ति एवं चिन्तन अनुचिन्तन में शुभ विचारों से सदैव सराबोर रहे। राग-द्वेष, क्लेश, दुःख, घृणा के कलाय कलमष के दाग-धब्बों के छींटे अपने अन्तःकरण पर नहीं पड़ने देना चाहिये।

और अधिक समझना हो तो ऐसे समझें—भगवान ने हमें यह जो स्थूल शरीर दिया है, इसका सहज धर्म है कि इसे हम दृश्यमान स्थूल जगत की सेवा में लगायें। सर्वत्र ईश्वर की सत्ता का दिग्दर्शन करते हुए तेरे-मेरे, अपने-पराये की भावना से ऊँचा उठकर सबके हित की कामना के साथ जगत में सबके कल्याण की भावना के साथ विचरण करें। स्थूल शरीर को जो रिश्तेदार, नातेदार, अड़ौसी-पड़ौसी, मित्र-सम्बन्धी हैं और भी जो भगवान की सत्ता के द्वारा आपके सहज सम्पर्क सान्निध्य में प्राणी आये हैं, उनके प्रति कर्त्तव्य की भावना के साथ प्रेम करना चाहिये।

भगवान ने यह जो हमें सूक्ष्म शरीर दिया है, इसका सहज धर्म है सूक्ष्म जगत के क्रिया-कलापों एवं कार्यों को करने वाली दिव्य ईश्वरीय सत्ता को जानना, मानना तथा उसे बारम्बार प्रणाम करना। उसकी प्रेमाभक्ति करना। उसके प्रत्येक विधान को सुख-दुःख, लाभ-हानि के विचार से परे, ऊँचा उठकर नतमस्तक होकर स्वीकार करना तथा यह मानना कि ईश्वर का प्रत्येक विधान मेरी आत्मा की उन्नति के लिए रचा गया

है। चाहे स्थूल शरीर पर सुख-दुःख, लाभ-हानि की विपत्ति आन पड़ी है, परन्तु परमात्मा मेरे पिता हैं तथा ईश्वर की शक्ति मेरी माता है। माता-पिता कभी भी अपने पुत्र का, या अपनी सन्तान का अहित नहीं करते हैं। ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये। यह सूक्ष्म शरीर का सहज धर्म है।

कारण शरीर का सहज धर्म है कि इस कारण शरीर का बन्धन खुल जाय। कारण शरीर का घेरा जो आत्मा में व्याप्त है वह छूट जाय तथा कारण शरीर का नाश हो जाने से आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा का मिलन-सम्मिलन का परम सुख, परम आनन्द, मोक्ष प्राप्त कर सके। मुक्ति प्राप्त करना ही हमारे कारण शरीर का सहज धर्म है, और यही मनुष्य जन्म प्राप्त किये प्राणी का भी इस धरती पर सहज धर्म है कि वह भगवान द्वारा प्रदत्त स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की सहायता से और मन, बुद्धि, अहङ्कार, अन्तःकरण की सहायता से मोक्ष को प्राप्त करे। मनुष्य योनि साधन धाम मोक्ष का द्वार है।

राम नाम को हाट भराण्यो,
या घर जाने की बाट।
परख-परख के पाँव धरो रे,
या तो अमरापुर की बाट॥

हरि भज लो, हरि भजने का मौका है।
आगे होने का चौरासी का धोखा है॥

आत्मा का सहज धर्म है, सदैव ही आत्मतत्त्व में स्थित रहना। सदैव ही आत्मवान स्थिति में अपने आपको बनाये रखना चाहिये। संसार में प्रवृत्त होकर जब हम कर्म करते हैं तो संसारी युग के प्रभाव की चपेट में शरीर, मन, बुद्धि, अन्तःकरण पर स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर पर उस सबका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक होता है।

भगवत्कृपा से एक बार आत्मा का साक्षात्कार प्राप्त हो चुका है तो फिर संसार से सावधान होकर सदैव अनात्म देहाभिमान से अपनी आत्मा को बचाकर रखना भी हमारा सहज धर्म है। हमारा अपना, हमारी शुद्ध-बुद्ध पवित्र आत्मा के प्रति यह हमारा परम धर्म है। परम कर्त्तव्य है। आत्मा को सदैव सत्-चिद्-आनन्दकी अवस्था में सच्चिदानन्द स्वरूप में ही टिकाये रखना, स्थिर रखना, स्थित रखना। आत्मा पर संसार एवं संसारी युग की गति-मति का प्रभाव नहीं पड़े, यह आत्मा का सहज धर्म है।

स्थूल शरीर को स्वस्थ्य और निरोगी बनाये रखना, यह हमारा हमारे स्थूल शरीर के प्रति सहज धर्म है, तथा इसे फिर संसार की सेवा में लगाये रखना चाहिये।

सूक्ष्म शरीर को भगवत साधना, आराधना में, भगवत्प्रेम से आलोकित बनाये रखना, यह हमारा सूक्ष्म शरीर के प्रति सहज धर्म है।

कारण शरीर का नाश करके जन्म-मरण के कारणरूप इस कारण का विनाश करके अपनी आत्मा का प्रकाश देखना तथा कारण शरीर को मुक्ति व मोक्ष प्रदान करना, यह हमारें कारण शरीर के प्रति हमारा सहज धर्म है।

आत्मप्रकाश का दर्शन करके, आत्मा-परमात्मा की जाग्रति करके सदैव आत्मवान स्थिति में मौजूद रहना अर्थात् मैं यह शरीर नहीं हूँ। यह तीनों शरीर भी मुझमें नहीं हैं। इस प्रकार सदैव आत्मवान स्थिति में मौजूद बने रहना तथा आत्मा के ज्ञान-विज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना यह हमारा हमारी आत्मा के प्रति सहज धर्म है। इसी अवस्था का नाम सहज समाधि कहा जाता है।

सहज धर्म क्या है? सहज धर्म कोई वस्तु या मिठाई नहीं है। सहज धर्म का क्षण-प्रतिक्षण में

निर्धारण होता है। विवेक, बुद्धि एवं दया तथा निश्छल भावना के साथ निर्णय लेकर सहज धर्म का पालन होता है। साथ ही छल, कपट, प्रपञ्च के आज के युग में सावधानी भी रखनी चाहिये।

स्त्री के सतीत्व के बारे में शास्त्रों का कथन है कि स्त्री किसी भी पर-पुरुष का स्पर्श न करे, चिन्तन न करे। यहाँ तक कि गुरुदेव के भी शरीर को छूकर प्रणाम नहीं करे। जब तक पति हो तो पति को ही गुरु माने, पति को छोड़ अन्य किसी को भी गुरु नहीं माने तथा पतिव्रत धर्म का पालन करे। यह कहा गया है। परन्तु पति-पत्नी दोनों ने किन्हीं सद्पुरुष को गुरु बनाया हुआ है। अचानक बीमारी के कारण गुरुदेव पीड़ा से तड़प रहे हैं तो यहाँ सहज धर्म क्या होगा। एक बेटी जैसे अपने पिता की सेवा करती है। एक बहन जैसे अपने भाई का ख्याल रखती है। उस भावना के साथ अपने गुरुदेव की सेवा करना उन क्षणों में क्या सहज धर्म नहीं होगा!

सहज धर्म कब क्या हो सकता है। यह उस समय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए :—

(१) आप श्री भोलेशङ्कर महादेव के मन्दिर में पूजा करने व दूध चढ़ाने जा रहे हैं। मन्दिर के समीप ही एक छोटा बच्चा दूध के लिए बिलख-बिलख कर रो रहा है।

(२) आप गुरुद्वारा, गिरजाघर, मस्जिद की ओर प्रार्थना करने हेतु जल्दी-जल्दी जा रहे हैं। समय हो चुका है। किन्तु बीच रास्ते में ही एक व्यक्ति तड़पता हुआ पड़ा है। खून बह रहा है, और उसे चिकित्सा की सहायता की जरूरत है। जगह भी ऐसी है कि यह कोई ठगने वाले झूठे गिरोह के नाटक वाला मामला नहीं है।

(३) किन्हीं दो धर्मों के धर्मावलम्बियों के बीच साम्प्रदायिक तनाव व दङ्गों की घटनाओं की लहर की खबर चारों ओर फैल चुकी है। उत्तेजनापूर्ण घटनाओं का माहौल है। आपके पड़ोसी अन्य धर्म से सम्बद्ध हैं तथा आपके मौहल्ले में आपके धर्म से सम्बद्ध लोगों तथा घरों की संख्या अधिक है।

(४) आप एक विशिष्ट धर्म से सम्बद्ध व्यक्ति हैं। कुछ विशिष्ट धार्मिक स्थलों पर प्रायः जाते हैं। इसी दौरान आपको किसी धार्मिक स्थल पर राष्ट्र-विरोधी तत्त्वों के उपस्थित होने तथा राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों को चलाने की जानकारी प्राप्त होती है।

(५) आप एक बहुत बड़े विशिष्ठ पद पर बैठे हुए व्यक्ति हैं। धर्म के आधार पर वाद-विवाद का कोई मामला आपके सामने आता है। आप उस पद की गरिमा, महत्ता व न्याय के नियमों, सिद्धान्तों के आधार पर कार्य करेंगे, या पक्षपात करेंगे?

सहज धर्म का पालन करना ही आज की जरूरत है। यही युगधर्म है। हम सब धर्म, पन्थ, मत-मतान्तर, सम्प्रदाय की सङ्कीर्ण भावनाओं से ऊँचा उठकर जब सहज धर्म पालन को सर्वोपरि महत्ता देंगे तो सचमुच यह धरा, यह धरती सहज धर्म पालन की सुधा से, पवन सुगन्ध से महक उठेगी। जिस खुशबू से सर्वत्र प्रेम, प्यार, पालन, पोषण, सेवा, परोपकार, तथा सबके घर-आँगन, परिवार में सुख-शान्ति, समृद्धि की वर्षा प्रकृति-शक्ति प्रसन्नतापूर्वक करने लगेगी।

सहज धर्म पालन की महिमा का उद्‌बोधन करने में, रचना में यथास्थान तथा यथासमय सहज धर्म के पालन के प्रति यदि कहीं कोई त्रुटि हुई है तो उसके लिए हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं। क्षमा करना भी प्राणीमात्र का सहज धर्म है। अतः कृपा करके हमारी भूल-चूक, अपराध क्षमा करने की कृपा करें। • ।। जय श्रीकृष्ण ।।

गतांक से आगे—

ज्ञान गुन सागर

• डॉ० अनुराग कृष्ण पाठक

卐

कंचन बरन बिराज सुबेसा।
कानन कुण्डल कुञ्चित केसा ।।४।।

श्रीहनुमान जी का शरीर सोने के समान रंग वाला है। सुन्दर वेष है। कानों में कुण्डल सिर पर घुंघराले बाल हैं।

विशेषार्थ—'कंचन बरन'—कंचन माने सोना, बरन माने रंग। इसका भाव—श्रीहनुमान जी स्वर्ण वर्ण के हैं। गोस्वामीजी ने लिखा—

कनक बरन तन तेज बिराजा।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ।।

हनुमान बाहुक में आया है—

स्वर्ण शैल संकास कोटि
रवि तरुण तेज घन
अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभदेहं

विनय पत्रिका में—

जातरूपा चलाकर विग्रह तसल्लूम,
विघुल्लता ज्वालमाला

स्कन्द पुराण में—

भगवान सूर्य ने इन्हें स्वर्ण प्रभा प्रदान करी

सूर्येण च प्रभा दत्ता....

नारद पुराण में—

श्रीहनुमान जी के शरीर का वर्ण स्वर्ण समान

ज्वलत्कान्चन वर्णाय

हनुमत्सहस्त्र नाम स्तोत्र में इन्हें अनेक नाम मिले। स्वर्णवर्णः रूक्मवर्णः नीलवर्णः।

श्रीतत्वनिधि में इन्हें स्वर्ण वर्ण बताया—

स्फटिकाभं स्वर्णनान्तिं,
द्विभुजं च कृताञ्जलिम्।

श्रीहनुमान जी का वर्ण सूर्य प्रभा स्वर्ण के समान है। इसका रहस्य है—ये इनके ज्ञान का आवरण है। शास्त्रों में सूर्य को ज्ञान का प्रतीक माना गया, अज्ञान को अंधकार माना गया। जिस प्रकार सूर्य अंधकारका नाश करता है, ज्ञान-अज्ञान का नाश करता है।

अज्ञानध्वान्त विध्वंस,
कोटिसूर्य समप्रभः ।

श्रीहनुमान जी ज्ञानियों में अग्रणी हैं परन्तु कुछ स्थानों पर इन्हें लाल रंग बताया गया—

लाल देह लाली लसे,
अरु धरि लाल लंगूर।
वज्र देह दानव दलन,
जय जय जय कपिसूर ।।

तो कहीं लाल, कहीं स्वर्ण। इसका रहस्य—वास्तव में श्री हनुमान जी का रङ्ग सोने का है, किन्तु सिन्दूर सारे शरीर में लगाने के कारण आप लाल रङ्ग के दिखने लगे—

रक्तचन्दन पुष्पैश्च सिन्दूराद्यैः समर्चयेत् ॥

दृष्टान्त—एक बार माता जानकी स्नान के बाद माँग में सिन्दूर लगा रही थीं। हनुमान जी ने पूछा—आप यह सिन्दूर क्यों लगाती हैं ? सीता जी बोलीं—इसे देखकर प्रभु प्रसन्न होते हैं और उनकी आयु बढ़ती है।

हनुमान जी ने कहा—मैं सोचा करता था प्रभु को कैसे प्रसन्न करूँ, उनकी आयु कैसे बढ़े। आज मालूम पड़ा कि सिन्दूर लगाने से यह होता है। बस, श्री हनुमान जी बाजार गए, बहुत-सा सिन्दूर लाए, घी में घोला, सारे शरीर में लगाकर दरबार में पहुँचे। भगवान देखकर मुस्कुराये, सारा दरबार हँसने लगा। श्री राम बोले—आपने यह क्या रूप बनाया हैं। हनुमान जी बोले—माता जी ने बताया कि आप सिन्दूर से प्रसन्न होते हैं तथा आपकी आयु बढ़ती है, इसलिए मैंने सोचा जरा से सिन्दूर से आप प्रसन्न होते हो तो सारे शरीर पर सिन्दूर होने से आपको कितनी प्रसन्नता होगी, आपकी आयु कितनी बढ़ जायेगी, इसीलिए मैंने सारे शरीर पर लगाया।

तब से हनुमान जी पर सिन्दूर चढ़ने लगा। यह लाल रङ्ग भक्ति का स्वरूप है तो ज्ञान के ऊपर भक्ति का आवरण होना चाहिए। बिना भक्ति के ज्ञान पंगु, बिना ज्ञान के भक्ति अन्धी होती है। इसलिए ज्ञान रूपी स्वर्ण के ऊपर भक्ति का लाल रङ्ग हनुमन्त लाल ने ही चढ़ाया है।

"बिराज सुवेषा"—इसका भाव है कि आप 'विराज' विशेष राजवेष हैं, जो बहुत 'सुवेषा' सुन्दर वेष जान पड़ता है। जब प्रभु की राजगद्दी हुई तब आपने राजवेष धारण किया था, मुकुट, आभूषण पहने थे। वर्णन है—

हनुमादि सब बानर बीरा।
धरे मनोहर मनुज सरीरा॥

'कानन कुण्डल'—आपके कुण्डल दिव्य हैं। आपका जन्म कुण्डल व लँगोटे के साथ हुआ।

पद्मराग कृत कुण्डल त्विषा,
पाटली कृत कपोल मण्डलम्।
दिव्य गेह कदली बनान्तरे,
भावयामि पवमान नन्दनम्॥

'कुञ्चित केसा'—आपके बाल छल्लेदार घुंघराले हैं, यहाँ सिर के बालों का वर्णन है, मुखारविन्द की शोभा अद्भुत है।

इस चौपाई का एक भाव है, यह हनुमान जी के उस समय की झाँकी का वर्णन है जब उन्होंने ब्राह्मण का रूप रखा था, क्योंकि बन्दर कभी कुण्डल धारण नहीं करता, न ही उसके सिर के बाल घुंघराले होते हैं।

पहली बार जब सुग्रीव के कहने पर राम, लक्ष्मण की परीक्षा लेने गए, तब ब्राह्मण वेष धारण किया।

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

ब्राह्मण कुण्डल भी धारण करता है, बाल भी घुंघराले होते हैं, तो हनुमान जी ने पूछा--

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।
छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥

श्री राम ने परिचय दिया, तुरन्त हनुमान जी अपने प्रभु को पहचान गए, चरणों में प्रणाम किया। श्री राम बोले—आप ब्राह्मण नहीं हैं, होते तो क्षत्रिय के चरणों में प्रणाम न करते।

तुरन्त हनुमान जी असली रूप में आए, हाथ जोड़कर सजल नेत्रों से बोले—प्रभु ! मैं सच्चा ब्राह्मण हूँ। कैसे ? ब्राह्मण—'ब्रह्म जना ब्राह्मण:' जो ब्रह्म को पहचाने। मैं जान गया आप ब्रह्म हैं। राम जी प्रसन्न होकर बोले—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना ।
तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ।।

अपने मन को छोटा न करो, तुम मुझे लक्ष्मण से दुगने प्रिय हो। तुरन्त लक्ष्मण जी सोचने लगे कि मैं इतने वर्षों से सेवा करता हूँ, अभी जो वानर आया वो मुझसे दूना प्यारा हो गया। समझ नहीं आया कैसे ?

श्री हनुमान जी राम-लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ाकर ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के पास में ले गए।

एहि बिधि सकल कथा समुझाई ।
लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई ।।

ऋष्यमूक पर्वत पर लक्ष्मण जी ने बहुत विचार कर यह प्रश्न पूछा कि प्रभु ! आपने श्री हनुमान जी को मुझसे दुगना प्रिय क्यों कहा ?

श्री राम बोले—लक्ष्मण ! तुम शेषनाग हो, मैं नारायण। तुम मुझे धारण करते हो, अकेले क्षीर-सागर में, परन्तु हनुमान ने मुझे तुम्हारे समेत धारण किया, इसलिए दूना प्यारा है। दूसरा तुम मेरे प्राणों के समान हो, और श्री हनुमान जी मुझे प्राणों से अधिक प्यारे हैं। दूसरी बार श्री हनुमन्त लाल ब्राह्मण वेष लेकर विभीषण जी के पास गए।

गोस्वामी जी की घोषणा—

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए ।
सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ।।

यह इनके विप्र रूप की पूजा है। ऐसा ही भाव है।

जीवन को मधुर बनाइए

- दिनचर्या में मानसिक व्यथा तनाव घटाइए, मन को शान्तचित्त रखिए, अनर्गल बातों से दूर रहिए। स्पर्धा, प्रतिद्वन्दता, वैमनस्यता, भेद-भाव, मनमुटाव आदि से बचिए।
- खान-पान, शाकाहारी, फलाहारी, निरामीष बनिए, जल प्रचुर मात्रा में पीजिए, पैदल घूमिए, बागवानी में रहिए, सूर्य की किरणों में स्मरण शक्ति व नेत्र ज्योति बढ़ाने की शक्ति रहती है।
- प्राकृतिक रहन-सहन बनाइए, भरपूर साँसे लें, खुली हवा में प्राणायाम की विधि और खिल-खिलाकर हँसने की क्रिया से सेहत अच्छी रहती है, हृदय और फेफड़ों का व्यायाम जोर से हँसने पर होता है, हृदय शरीर की समस्त रक्त-सञ्चालन क्रियाओं को करता है और मस्तिष्क को स्फूर्ति देता है, स्वस्थ स्वास्थ्य के लिए इसे अवश्य करें।
- अनैतिक कार्य करना, दुराचार करना, किसीका शोषण करना, गलत सोवतमें रहना, माँसाहार, मदिरा-पान, धूम्रपान, पान मसाले खाना आदि आपके शरीर की शक्ति और स्फूर्ति घटाता है, और मानसिक उद्विग्नता बढ़ाता है, नींद भी अच्छी नहीं आती है, जब आप चटपटे और तले हुए पदार्थ अथवा अधिक तेज मिर्च मसाले यदि आह खाते हैं। —डॉ० रश्मि अग्रवाल

भगवान सूर्य का ध्यान

● डॉ० रमाशंकर पाण्डेय

★

भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्णं आयुश्च पञ्चमः। कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पौषमासंनयन्त्यमी ॥१॥
तिथिमांसऋतूनां च वत्सरायनयोरपि। घटिकानां च यः कर्ता भगो भाग्य प्रदोऽस्तु मे ॥२॥

पौष मास में भग नामक आदित्य (सूर्य) अरिष्टनेमि ऋषि, पूर्वचित्ति अप्सरा, ऊर्ण गन्धर्व, कर्कोटक सर्प, आयु यक्ष तथा स्फूर्ज राक्षस के साथ अपने रथपर संचरण करते हैं। तिथि, मास, सवंत्सर, अयन, घटी आदि के अधिष्ठाता भगवान भग मुझे सौभाग्य प्रदान करें। ग्यारह हजार रश्मियों से तपनेवाले भगवान भग का रक्तवर्ण है।

भगवान सूर्य के सातवें विग्रह का नाम भग है। यह ऐश्वर्यरूप से समस्त सृष्टि में निवास करते हैं तथा पौष मास में सूर्य के रथ पर चलते हैं। भग कहते हैं—सूर्य, चन्द्रमा, शिव, सौभाग्य, प्रसन्नता, यश, सौन्दर्य, प्रेम, गुण-धर्म, प्रयत्न, मोक्ष तथा शक्ति को। पौष के भयङ्कर शीत में सूर्य-चन्द्र की भाँति शैत्य बढ़ाकर, शिव की भाँति कल्याण कर प्रकृति में स्वर्गीय सुषमा की सृष्टि करते हैं तथा अपने उपासकों को ऐश्वर्य और मोक्ष प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य—ये छः भग कहे जाते हैं और इनके स्वामी विष्णु हैं, अतः पौष मास के प्रत्येक रविवार को 'विष्णवे नमः' कहकर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। नैवेद्य में भगवान सूर्य को तिल-चावल की खिचड़ी तथा अर्घ्य में बिजौरा नीबू देना चहिये।

सूर्योपासना का फल—श्रीकृष्ण-दर्शन—

एक दिन श्रीराधा जी श्रीकृष्ण-विरह में विह्वला और उन्मत्त-सी प्रतीत हो रही थीं। उनकी माताजी ने अपनी पुरोहितानी जी को बुलवाया; क्योंकि वह ज्योतिषी और वैद्य दोनों थीं। उन्होंने श्रीराधिकाजी को देखकर कहा—'लाडिली का रोग असाध्य है, इसकी कोई औषधि नहीं है। केवल पूजा-पाठ और आराधना से ही इसका निदान सम्भव है। यदि श्रीराधा राधाकुण्ड के समीप सूर्य-मन्दिर में पूजा-पाठ करने के लिये जायँ तो न केवल स्वास्थ्य लाभ होगा, अपितु सर्वविध श्रेय तथा धन-धान्य की प्राप्ति भी होगी।'

दूसरे दिन श्रीराधा अपनी सखियोंसहित सूर्य-मन्दिर पहुँचीं। वे षोडशोपचार पूजन-सामग्री लेकर जैसे-ही पूजन के लिये प्रस्तुत हुईं, उसी समय श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे हुए उनके प्रिय सखा मधुमंगल वृद्ध ब्राह्मण का वेष बनाकर पूजा कराने के लिये आ गये। उन्होंने संकल्प में सूर्य-पूजा का फल श्रीकृष्ण-प्राप्ति कहा। पूजा के अन्त में मधुमंगल समस्त सामग्री मिठाई, फल इत्यादि बाँधकर चलने लगे। श्रीराधाजी ने पूछा—'पण्डितजी! यह सामग्री लेकर आप कहाँ

जा रहे हैं ?' पण्डितजी ने कहा—'मैं सूर्य का पुजारी जरूर हूँ, पर मेरे इष्ठदेव श्रीकृष्ण कुसुम-सरोवर पर भूखे बैठे हैं। मैं वहीं जा रहा हूँ।' मैं वहीं जा रहा हूँ।' श्रीराधा जी के अनुरोध पर मधुमंगल श्रीराधा जी एवं गोपियों के साथ कुसुम-सरोवर पर पहुँचे। वहाँ श्रीराधा और श्रीकृष्ण का अद्‌भुत (दिव्य) मिलन हुआ। भगवान श्रीकृष्ण के साथ ग्वाल-बालों ने छककर वह प्रसाद ग्रहण किया।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राधे ! सम्पूर्ण जगत् के मूल भगवान आदित्य हैं। इन्द्र आदि देवता इन्हीं से उत्पन्न हुए हैं। देवताओं तथा जगत् में सम्पूर्ण तेज इन्हीं का है। अग्नि में दी गयी आहुति सूर्यनारायण को ही प्राप्त होती है। इसलिये आदित्यसे ही वृष्टि होती है। वृष्टिसे अन्न उपजता है, अन्नसे प्रजाका पालन-पोषण होता है। वे मोक्ष के लिए आराधना करने वाले लोगों के लिये मोक्षस्वरूप हैं। सूर्य भगवान मेरे ही स्वरूप हैं। उनकी नित्य-प्रति पूजा-उपासना करने वाले को मेरे वृन्दावनविहारी रूप का दर्शन प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

विमलादित्य का माहात्म्य—

काशी के परम सुन्दर हरिकेश वन में भगवान विमलादित्य विराजमान हैं। प्राचीन काल की बात है, उच्च देश में कोई विमल नाम का क्षत्रिय था। यद्यपि उसका आचरण उत्तम था। वह सदाचारी था, लेकिन पूर्वजन्म के किसी अपराध से उसको कुष्ठ हो गया था, उसने स्त्री, गृह और धन—सब का परित्याग करके काशी में आकर भगवान सूर्य देव की आराधना की। वह विधिपूर्वक भगवान सूर्य को अर्घ्य देता और सूर्य देवता के स्तोत्रों का नित्य प्रेमपूर्वक पाठ करता था। उसके बहुत दिनों की उपासना के बाद भगवान सूर्य प्रकट हुए।

भगवान सूर्य ने प्रकट होकर कहा—'विमल ! तुम्हारे मनोयोगपूर्ण आराधना से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें यह वर देता हूँ कि तुम्हारा यह कुष्ठ रोग दूर हो जाय। इसके सिवा तुम इच्छानुसार जो भी चाहो, वर माँग लो।'

विमल ने भगवान सूर्य को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत् के नेत्र हैं। जो लोग आप में भक्ति रखते हों, उनके कुल में कभी कोई कोढ़ी न हो। इतना ही नहीं, उन्हें अन्य प्रकार के रोग भी न हों और उनके घर में कभी दरिद्रता न रहे। आपके भक्तजनों के मन में कभी किसी प्रकार का सन्ताप न हो।

भगवान सूर्य ने कहा—'महाप्राज्ञ ! ऐसा ही होगा, इसके अलावा दूसरा उत्तम वर भी मैं तुम्हें देता हूँ। तुमने काशी में मेरी जिस मूर्ति की पूजा की है, उसका सान्निध्य मैं कभी नहीं छोडूंगा, सदा उसमें निवास करूंगा। यह प्रतिमा तुम्हारे ही नाम से विख्यात होगी। इसका नाम विमलादित्य होगा। यह प्रतिमा समस्त भक्तों को वर देने वाली तथा उनके समस्त रोगों और पापों का संहार करने वाली होगी।

इत्थं स विमलादित्यो वाराणस्यां शुभप्रदः।
तस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठरोगः प्रणश्यति ॥

यह विमलादित्य वाराणसी में भक्तों को सदा ही शुभप्रद तथा कुष्ठरोग का विनाश करने वाले हैं। काशी में भगवान विमलादित्य श्रद्धापूर्वक पूजन तथा दर्शन कहने वालों के अभीष्ट मनोरथों की सिद्धि करते हैं तथा अन्त में मुक्ति देते हैं। इनके विधिपूर्वक पूजन से रोगी रोगमुक्त हो जाता है, धनहीन धन प्राप्त करता है, राज्यभ्रष्ट को राज्य मिल जाता है तथा पुत्रहीन को पुत्र प्रात्र प्राप्त होता है। इस प्रकार विमलादित्य धनधान्य तथा पशु आदि की नित्य अभिवृद्धि करने वाले तथा सद्‌गति देने वाले हैं। ●●

गताङ्क से आगे—

॥ मथुरा ॥

● सहदेव प्रसाद चतुर्वेदी

卐

एक मन्दिर कन्नौज के राजा विजयपाल ने जन्म-स्थान पर बनवाया था। जिसको सिकन्दर लोदी ने १५७३ सं० में नष्ट कर दिया। हिन्दू इस पूरे युग में त्रस्त रहे। उस समय हिन्दू लोग घाटों पर स्नान भी नहीं कर सकते थे। उन्हें बलात मुसलमान बना दिया जाता था। केशव कश्मीरी भट्ट निम्बार्की विद्वान ने उससे मुक्ति दिलवाई थी। यह यन्त्र विश्राम घाट पर लगा हुआ था।

इस काल में दक्षिण में भी मुसलमान रियासतें स्थापित हुयीं। चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य, नानक, रामानन्द, कबीर, मीराबाई, जैसी विभूतियां इसी काल के आस-पास हुयीं। इन विभूतियों द्वारा मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धनादि को अपना केन्द्र बनाया गया। सोलहवीं शताब्दी का काल धार्मिक दृष्टि से प्रभावी हुआ। इस जनपद के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया। पृष्ठभूमि में शङ्कर सिद्धान्त छाया रहा। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवत गीता, ये तीनों ही वेदों के आधारभूत ग्रन्थ है। इन्हें प्रस्थानत्रयी भी कहा जाता है। शङ्कराचार्य धरती की प्रथम विभूति थे, जिन्होंने प्रस्थानत्रयी के भाष्य के द्वारा अपना अद्वैत पन्थ प्रतिपादित किया। इस अद्वैत के विरोध में चार सम्प्रदाय स्थापित हुए। चारों ही वैष्णव सम्प्रदाय थे। मथुरा जनपद का इनमें से किसी से घोर, किसी से घनघोर और किसी से सामान्य सम्बन्ध अवश्य रहा। ये हैं :—

१—रामानुजाचार्य जी का	विशिष्टाद्वैत	(ज०सं० १०७४) (श्री सम्प्रदाय)
२—विष्णु स्वामी जी का	शुद्धाद्वैत	(१३ वीं सदी) (रुद्र सम्प्रदाय)
३—निम्बार्काचार्य जी का	द्वैताद्वैत	(×) (सनकादि सम्प्रदाय)
४—माध्वाचार्य जी का	द्वैत	(१२६५ सं०) (ब्रह्म सम्प्रदाय)

चारों ने शङ्कराचार्य के इस मत को अस्वीकार किया कि जगत ब्रह्मणी सत्ता से भिन्न केवल भ्रान्ति अथवा माया है। माया के कारण केवल भासित सत्य है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनात्परः ॥

यही वह सूत्र वाक्य है, जिस पर अन्य सम्प्रदायों ने विरोध कर अपने सम्प्रदाय खड़े किये।

माघ कृ० ७ गुरुवार को सं० १३५६ में प्रयाग में रामानन्द स्वामी का जन्म हुआ। १४६७ वै० शु० ३ को निर्वाण हुआ। रामानन्दी सम्प्रदाय के उदयकाल में मथुरा सुल्तानी शासन में था। वैष्णव धर्म सङ्कट में था। रामानन्दी वैष्णवों का ध्यान इधर भी आया। इनके प्रधान शिष्य

स्वामी अनन्तानन्द ने ब्रज की उन्नति में सांस्कृतिक गतिविधियों में लहर उत्पन्न की। उस समय जनपद संस्कृत विद्या का केन्द्र था। अनन्तानन्द ने भी संस्कृत विद्यालय अनन्तवाड़ा (अन्तापाड़े) में खुलवाया। बालक कालिदास ने इस विद्यालय में अध्ययन किया। यहीं कालिदास बालक आगे चलकर प्रसिद्ध हुआ। कालिमठ की गली में एक साधना - स्थली इनकी अभी भी है। यह गली गोलपाड़े नामक मोहल्ले में है। आप कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। अग्रदास, नारायणदास, सूरजदास और कल्याणदास आदि कालिदास के गुरुभाई थे।

अब मुगलकाल (वि० सं० १५८३ से वि० सं० १८०५ तक) आरम्भ हुआ। बाबर ने दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी तथा राजस्थान के राणा सांगा को हराया। ५२२ वर्ष तक इनका राज्य भारत भूमि पर रहा। बाबर, हुमायूँ, अकबर (सन् १५५६ से १६०५ तक), जहाँगीर, शाहजहाँ, दाराशिकोह, औरङ्गजेब, बहादुर शाह (मुअज्जम) जहाँदार शाह (सन १७१२ ई०), फरुखादियार, मौहम्मद शाह (सन १७२० ई०) आदि बादशाह हुए। मोहम्मद शाह अयोग्य और विलासी बादशाह था। नादिरशाह का आक्रमण हुआ १३ जुलाई सन १७३९ को दिल्ली की फौज हार गई। १५ करोड़ रुपये, ५० करोड़ के हीरा-जवाहरात और न जाने कितना धन लूटकर वह ईरान लौट गया। मोहम्मद शाह सन १७४८ ई० तक बादशाह रहा। रफीअहमद शाह गद्दी पर बैठा। रही-सही इज्जत मुगलों की इसने धूल में मिलाई। इसका वजीर सफदर जङ्ग था। उधर नादिर शाह के बाद गद्दी पर अहमद शाह अब्दाली सन १७४७ में गद्दी पर बैठा। २२ फरवरी सन १७५७ ई० को अब्दाली ब्रज में घुसा। १ मार्च १७५७ को होली के दिन चार घण्टे तक धुँआदार ब्रज में कत्लेआम कर ३००० लोग मार दिये। जहाँन खाँ नजीब के सेनापतित्व में फौज को मथुरा छोड़ गया, और कह गया कि बचे-कुचे हिन्दुओं को भी मार देना। सेना तीन दिनों तक कत्लेआम करती रही। अत्याचार शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता। मथुरा लाल रङ्ग से रँग गई। १५ मार्च को महाबन लूटा। वहाँ चार हजार नागा बाबा भभूति लपेट कर भिड़ गये। आधे नागा बाबा मारे भी गये। अब्दाली को फौज वापिस बुलानी पड़ी। २१ मार्च को आगरा पहुँच गये। अक्टूबर १७५९ में अब्दाली ने फिर आक्रमण किया। १ नवम्बर को १७६० ई० में पानीपत का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। जिसमें अब्दाली जीता।

चतुर्वेदियों में सात भाँवर एक साथ में नहीं पड़तीं, क्यों ? क्योंकि—एक सम्पन्न चतुर्वेदी परिवार में विवाहोत्सव चल रहा था कि अब्दाली का आक्रमण हो गया। तीन दिनों तक कत्लेआम चला विवाह में चार भाँवर पड़ चुकी थीं। शेष तीन भाँवर चौथे दिन पड़ीं। यह परिवार वशिष्ठ गोत्र का था। तब से कुछ समय तक यह परम्परा बशिष्ठ गोत्री चतुर्वेदियों में चली। कालान्तर में यह प्रथा सम्पूर्ण चतुर्वेदी समाज में मान्य हो गई। एक दूसरी कथा के अनुसार—

रघु राजा की कुण्डली में ऐसा योग पड़ा कि उनकी सातवीं भाँवर पूर्ण होते-होते उनका सिर फट जायेगा। अतः उनके पिता रघु की शादी ही करने को तैयार न थे। धरेजा प्रथा थी नहीं। वशिष्ठजी विधि की गति को रोकने में समर्थ थे। उनसे प्रार्थना की गई। अनुमति दे दी गई, विवाह हुआ। सभी शेष रश्म पूरी होने पर भाँवरों का क्रम आरम्भ हुआ। वशिष्ठ जी ने चार भाँवरें तो डलवा दीं। अपना पूजन करवाया। चिरञ्जीव रहने का आशीर्वाद दिया। चौथे दिन शेष तीन भाँवरें डाली गयीं। इनका क्रम ५-६-७ न रखकर

१-२-३ रखा गया। सातवीं भाँवर का नामोल्लेख ही न किया गया। बिवाह सम्पन्न हुआ। चतुर्वेदी ब्राह्मणों का एक शिष्ट मण्डल उन दिनों वशिष्ठ जी का अतिथि बना हुआ था। ये शिष्ट मण्डल राम जी से मधु को मारने की गुहार करने गया था। इस शिष्ट मण्डल ने सब देखा। कदाचित प्रभाव इन पर भी पड़ा।

सन् १६६६ में शिवाजी आगरा में औरङ्गजेब के दरबार में उपस्थित हुए, और आँखों में धूल झोंक कर भाग निकले। जनश्रुति के अनुसार वे मथुरा भी आये थे। मथुरा के रास्ते आगे बढ़ गये थे। अब्दुल नवी खाँ मथुरा में बड़ी वे-रहमी के साथ कड़ाई से शासन कर रहा था। सन् १६६६ में जाटों को ये सब सहन न हुआ, वे तिलपट के जाट जमींदार गोकुला के नेतृत्व में सङ्गठित हुए। १० मई सन् १६६९ में इस जाट सङ्गठन ने दशरा गाँव की मुठभेड़ में अब्दुल नवी को ठिकाने लगा दिया। जनवरी १६७० में गोकुला को कोतवाली के सामने आगरा में अङ्ग-अङ्ग से काट दिया गया। ३० सितम्बर १६६९ को गोवर्धन की श्री-नाथ जी की प्रतिमा को लेकर गोसाई जगह-जगह भागे अन्त में मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने नाथद्वारा में यह विग्रह १० फरवरी १६७२ को स्थापित करवाया। इसी तरह से गोवर्धन के द्वारिकानाथ काँकरौली में पधारे। वृन्दावन श्री गोविन्ददेव की छवि आमेर आई। १३ जनवरी १६७० ई० को बीरसिंह देव निर्मित केशवदेव के मन्दिर को तोड़ने का आदेश हुआ, जो कुछ दिनों उपरान्त तोड़ दिया गया।

इधर गोकुला के मारे जाने की आग भीतर ही भीतर सुलगती रही। सम् १६८५ ई० में राजा-राय तथा रामचेहरा के नेतृत्व में जाटों की सेना फिर उभरी। १६८८ ई० में जाटों ने सिकन्दरा में अकबर के मकबरे की खवर ली। बहुमूल्य वस्तुयें साथ ले गये। अकबर की कब्र को खोद डाला, और हड्डियों को निकाल कर जला दिया। इस समय जाटों ने अपना केन्द्र मथुरा को बना रखा था। तव औरङ्गजेव ने आमेर के राजा विशन-सिंह को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। राजाराम की मृत्यु हुई।

१६९५ ई० में जाट पुनः चूड़ामन के नेतृत्व में उठे। चूड़ामन राजाराम का भाई था। यह सङ्ग-ठन बहुत कुशल और दूरदर्शी था। इस चूड़ामन का इतिहास बड़ा गौरवमय रहा। सिनसिनी का गया हुआ किला वापिस ले लिया। २० फरवरी सन् १७०७ के दिन औरङ्गजेब अहमद नगर में मर गया। चूड़ामन के जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव आये। चूड़ामन इतना शक्तिशाली हुआ कि आमेर का राजा सवाई जयसिंह भी उनके विरुद्ध जाने को तैयार न हुए। चूड़ामन की सन् १७२१ में मृत्यु हुई। चूड़ामन का भतीजा बदनसिंह था। उसने मुगल शासक सहादत खाँ से मेल कर लिया। इससे जाट सङ्गठन को काफी नुकसान पहुँचा। बदनसिंह ने मुगल सम्राट तथा सवाई जयसिंह से मेल करके दूसरी जाट शक्ति को बढ़ा लिया। इस समय भरतपुर, डीग और कुम्हेर की खूब उन्नति हुई। मथुरा पर भी इसका प्रभाव पड़ा। प्रसिद्ध जल महलों का निर्माण हुआ। जाट फौज भी बनी। १७५५ ई० में पुत्र सूरजमल गद्दी पर बैठा।

सन् १७५५ से १७६३ तक सूरजमल प्रतापी राजा हुए। राज्य बहुत बढ़ाया। शाहदरा के पास रुहेलों ने सूरजमल को धोखे से मार दिया। १७६३ ई० में जबाहर सिंह भरतपुर की गद्दी पर बैठे। १७६४ में जबाहर सिंह ने दिल्ली पर हमला कर दिया। रुहेलों के सरदार नज़ीब थे। जवाहर का छोटा भाई उनसे जा मिला। फलतः घेरा हटाना पड़ा। इन सभी जाट राजाओं ने ब्रज के साँस्कृतिक स्थलों की भरपूर सहायता एवं रक्षा

की। अनेक धार्मिक अनुष्ठान उनके यहाँ सम्पन्न हुए। गोवर्धन पर तो उनकी महती कृपा थी ही। जवाहर सिंह के बाद भाई रतन सिंह गद्दी पर आये। ये मन मौजी राजा थे। ८ अप्रेल सन् १७६९ को रूपानन्द गुसांई ने छल से इन्हें मार दिया। नवलसिंह राजा हुए, और जाटों की शक्ति घटती गई। मराहठा शासन कुछ समय तक चला। ब्रज मण्डल की इन्होंने भी रक्षा की।

बादशाह शाह आलम ने उधर अपने आपको १६-९-१८०३ को अँग्रेजों के हाथों सौंप दिया। २ अक्टूबर १८०३ को मथुरा में अँग्रेजों का अधिपत्य हो गया। उस समय भरतपुर के राजा रणजीत सिंह थे। २९-९-१८०३ में "भरपुर राज्य" स्वतन्त्र स्वीकार कर लिया गया। बदले में नरेश ने उनका सहायक होना स्वीकार किया।

यशवन्त राव होल्कर अँग्रेजों की आँख के काँटे थे। उन्होंने मराहठा, जाट, राजपूत, खन्देले सिख तथा रुहेलों को एक मञ्च पर लाने की भरपूर चेष्टा की, परन्तु उन्हें सफलता न मिली। भरतपुर के राजा अवश्य होल्कर के सङ्ग हो गये। १५ सितम्बर १८०४ को होलकर साठ हजार घुड़सवार, १५ हजार पैदल तथा १९२ तोपों सहित मथुरा आये। कर्नल ब्राउन आगरा भाग गये। सारा सामान होल्कर के हाथों लग गया। ४ अक्टूबर को लेक ने मथुरा पर पुनः अधिकार कर लिया। होल्कर दिल्ली होते भरतपुर आ गये। लार्ड लेक ने भरतपुर का किला घेर लिया। फिर दोनों में सन्धि हो गई। जुलाई १८०५ में वेलेजली के स्थान पर कार्नवालिस गवर्नर जनरल बने। १८२४ में मथुरा जिला बना। १८३२ में कुछ सीमा परिवर्तन हुआ। १८६८ के बाद वर्तमान चार तहसील रह गयीं।

३१ मई १८५७ का दिन स्वतन्त्रता संग्राम का दिन निश्चित किया गया। उस समय मथुरा के कलक्टर थार्न हिल थे। खजाने में ६१ लाख रुपये थे। जो कि आगरा पहुँचाये जाने थे। भारतीय सिपाही तैयार न थे। १६ मई को खजाना लूट लिया गया। अँग्रेज नेता वर्लटन को मार दिया गया। जेल से कैदी छुड़ाये और दिल्ली चल दिये। उस समय मथुरा और उसके आस-पास एक तरह से अँग्रेजी शासन समाप्त सा हो गया। थार्न हिल छाता में था। सेठ परिवार लखमीचन्द गोविन्द दास ने अँग्रेजों का सहयोग किया। थार्न हिल सेठ परिवार के यहाँ छिपा रहा। उसने अपनी स्थिति मजबूत कर ली। बाद में सेठ परिवार सहित सब भाग गये। कहते हैं चतुर्वेदियों ने क्रान्तिकारियों की बहुत-बहुत सहायता की।

भारतीय फौज दो दिनों तक मथुरा में रही। फिर दिल्ली बढ़ गई। १४ सितम्बर को दिल्ली में फिर अँग्रेजों का अधिकार हुआ। अँग्रेजों ने नादिर शाह को भी अत्याचार करने में पीछे छोड़ दिया। लाशों से दिल्ली पट गई। मथुरा में जुलाई १८५८ को शान्ति हो गई। सन् १८५८ में कम्पनी राज्य आरम्भ हो गया। अँग्रेज हर तरह से भारतीयों को चूसने लगे। सारा धन इंगलैण्ड पहुँचने लगा। अँग्रेज कहा करते थे कि—हमारी पद्धति स्पञ्ज जैसी है. जो गङ्गा तट को चूसकर टेम्सतट पर निचोड़ देती है।

१८३७-१८३८ की साल ब्रज मण्डल के लिए अभिशाप सिद्ध हुई। भीषण अकाल पड़ा। १८५८ के काल में कम्पनी के स्थान पर भारत सीधा ही इगलैण्ड के शासन में आ गया। विक्टोरिया रानी सम्राज्ञी हो गयीं। १८६०-६१ तथा १८७७ ७८ में फिर अकाल पड़े। १८७४ में १४० मील लम्बी आगरा नहर बनी। रेल, तार, डाक, सड़क, कचहरी और पुलिस का प्रबन्ध हुआ। दिल्ली, मथुरा और आगरा को जोड़ा गया। १८७२ से १८७७ तक ग्राउज मथुरा के कलक्टर रहे। ग्राउज

मथुरा के लिए वरदान स्वरूप थे। हर क्षेत्र में यहाँ सुधार हुआ। सन् १८७४ में संग्रहालय की स्थापना हुई। यह कचहरी के पास था। १९२९ में यह संग्रहालय वर्त्तमान स्थान डेम्पियर पार्क में स्थानान्तरित किया गया।

सन् १८६० में स्वामी दयानन्द मथुरा आये। वर्षों यहाँ रहे। १८६३ में प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द जी से दीक्षा ली। १९०९ में प्रेम महा विद्यालय की स्थापना हुई। १९११ में फर्रुखाबाद से गुरुकुल वृन्दावन लाया गया। व्रज मण्डल फिर क्रान्ति का केन्द्र बना। १९१९ में जलियाँ वाला बाग काण्ड से मथुरा नगर गरम हो गया। गाँधी पार्क पुरानी कोतवाली में विशाल सभायें हुयीं। फिर तो आगे चलकर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। प्रेम महा विद्यालय इन कार्यों में पीछे न रहा। इस विद्यालय में समय-समय पर गाँधी, मोतीलाल, लाजपत राय, डॉ० अन्सारी आदि ने आ-आकर इस विद्यालय का गौरव बढ़ाया। सन् १९३२ में विद्यालय पर कठोर कार्यवाही कर इसे जब्त कर लिया गया। सन् १९३४ में यहाँ से कृष्णदत्त पालीवाल ऐसेम्वली चुनाव में विजयी हुए। पटेल भूला भाई देसाई भी यहाँ आये। स्वतन्त्रता से कुछ पूर्व मथुरा के आस-पास के मेवों को भड़काया गया। मथुरा, भरतपुर, अलवर, गुड़गाँव आदि में ऐसा हुआ। फिर तो उनके विरोध में व्रज के जाट, अहीर और गूजर, चौबे आदि सब खड़े हो गये। यह एका सामञ्जस्य अकथ प्रशंसनीय था। सब एक थे। कोसी, कामर, गांठौली, डीग, नौगाँव आदि में भयङ्कर मार-काट हुई। भरतपुर के राजा बच्चूसिंह की हवा ऐसी चली कि उसे हवा नहीं आँधी और तूफान की संज्ञा भी दी जाय तो भी कम ही है। वैसे यहाँ पर साम्प्रदायिक दङ्गे कभी होते नहीं रहे। मेव भाग गये। बच्चूसिंह के आने की खबर सुनकर उनके मार्ग के आगे १००-१०० मील तक के विरोधी भाग खड़े होते थे।

यमुना नदी के अतिरिक्त यहाँ पर दो नदियाँ पथवाह तथा करवन यहाँ और भी हैं। पथवाह अलीगढ़ से निकलकर माँट के उत्तर से गुजरती हुई यमुना में जा मिलती है। करवन दक्षिण पूर्व में सादाबाद से गुजरती हुई आगरा पहुँचती है।

पहाड़ियाँ—मुख्य अरावली की श्रेणियों नन्दगाँव और बरसाने की हैं।

प्राचीन पेड़—कदम्ब, अशोक, चम्पा, नागकेशर, करील, पीलू, शीशम, इमली, नीम, जामुन, सिरस, खिरनी, पीपल, बरगद, छोंकरा, ढाक, बेल और बबूल आदि।

पशु—गाय, बैल, ऊँट, घोड़ा, बकरी, भेड़, खच्चर और हाथी आदि।

पक्षी—मोर, कोयल, गौरैया, अबाविल, कठजोर, तोता, नीलकण्ठ, कौआ, चील, बाज, बगुला और कबूतर आदि प्रसिद्ध हैं।

स्त्रियाँ तीन प्रकार की हैं—पहली, जो पति से आगे चलती हैं, और दूसरी, जो पति के साथ चलती हैं, तथा तीसरी, जो पति के पीछे-पीछे ही चलती हैं।

इसी प्रकार पुरुष की भी तीन श्रेणी हैं।

श्री भगवान के दर्शन भी तीन मुद्रा संयुक्त हैं–

" मुखे वेनु, पदे रेनु तथा अग्रे धेनु "

यह भूमि २७ - २८ अक्षांस तथा ७७.४१ पू० देशान्तर के मध्य भू-मण्डल पर स्थित है। जो कि समुद्र तल से १८७ मीटर ऊँची है। यहाँ की जनसंख्या नगर की लगभग २ लाख है। यहाँ पर वर्षा अधिकतम ६० सेण्टी मीटर तक होती है। यहाँ का तापमान सर्दियों में सामान्यतः ३ से १० और गर्मियों में २२ से ४७ डिग्री तक रहता है।

मथुरा में तीन प्रसिद्धियाँ सदा से ही रही हैं। ये हैं—बन्दर, चौबे और कछुआ। कछुआओं को इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं देखा है कि—श्री यमुना जी की आरती के दर्शन करने हेतु उनकी भीड़ लग जाती थी। जैसे किसी जनप्रिय नेता की सभा में श्रोताओं की भीड़ उमड़ पड़ी हो। ये विशाल पीठ वाले कछुआ अब लोप हो चुके हैं।

शेष दो दर्शनीय प्रसिद्धियाँ अभी भी देखने को मिलती हैं। संस्कारों से द्विज, विद्या से विप्र, और चारों वेदों के ज्ञान से ये विप्र चतुर्वेदी कहलाये जाते हैं।

व्रजपुर के उर दोय, विप्र और बन्दर भाखे।
अजहूँ दोनों सुलभ, पुरी के नाके-नाके॥
क्षिप्र-धारवत् तेज, ब्रह्म-विद्या के बाँके।
कंस वंश के शत्रु, मित्र ये नन्द लला के॥
सबही विधि समृद्धये, काव्य-शास्त्र-समधीत।
स्वरन शाप के सारथी, यम की रखें न भीत॥

यों विलक्षण सात्त्विकी विचारधारा वाले, तथा नाना भोज्य सामिग्रियों के सान्निध्य में रहकर तत्वज्ञों की निष्ठा बढ़ाने वाले, नारायण-परायण-रता ये व्रजवासीगण तो लोक-प्रसिद्ध हैं ही। जो आज प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर हैं। —❀—

क्या करना चाहिए ?

—दयानन्दस्वरूप एडवोकेट, बुलन्दशहर

१– बच्चा जब गर्भ में रहता है तभी से उसके लिए माता-पिता को सक्रिय-सजग रहना चाहिए।
२– दुराचार, मदिरा-पान, मांसाहार और सभी दुराचरणों से दूर रहना चाहिए।
३– पुरुषार्थ एवं नैतिक मूल्यों की मान मर्यादा सदैव रखनी चाहिए।
४– सदाचार और संयमी होकर छल-कपट और प्रपञ्चों से दूर रहना चाहिए।
५– आत्म विश्वास और आत्म बल के साथ जीवन यापन करना चाहिए।
६– फलाहार, शाकाहार और बनस्पतियों का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए।
७– प्राकृतिक हवा में ही रहना चाहिए।
८– प्राकृतिक बागवानी के वातावरण में ही रहना चाहिए।
९– कभी किसी को नहीं सतायें और न कभी किसी की मजबूरी से स्वार्थ सिद्ध करना चाहिए।
१०– चाय, काफी, धूम्रपान और पान मसालों से हमेशा दूर रहना चाहिए।
११– प्रत्येक कार्य उचित ढङ्ग से, उचित समय पर ही करना चाहिए।
१२– अपने से बड़ों की मान मर्यादा का ध्यान रखते हुए उनके साथ शिष्टाचार करना चाहिए।
१३– नम्रता एवं सहृदयता से हमेशा परोपकारी रहना चाहिए।
१४– जीवन को हमेशा ही मधुबन की तरह संजोकर रखना चाहिए।
१५– घर-आँगन को प्रभु का ज्ञान-मन्दिर मानकर निर्मल, स्वच्छ, पावन, पवित्र रखना चाहिए।
१६– बच्चे जैसा माता-पिता को देखते हैं वैसा करते हैं, उनके समक्ष अपकृत्य नहीं करना चाहिए।
१७– जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए, तामसिक व मादक पदार्थों से दूर रहना चाहिए।
१८– क्रोध, अभिमान, भावुकता और अत्याचार से दूर रहना चाहिए।
१९– सात्विकता, उदारता, अपनत्वता के साथ जीवन को प्रफुल्ल, प्रशान्त, प्रशस्त बनाना चहिए।

अब रङ्ग में भङ्ग हो रहा है। आदमी, आदमी की जङ्ग में नङ्ग हो रहा है॥

होली का रंग

—श्रीकृष्ण अग्रवाल 'मङ्गल'
राजा कटरा, कोलकत्ता

•★•

बचपन से पचपन तक कितने रङ्ग बिरङ्गे रङ्ग देखे।
कितने ही रङ्गदारों पर मैंने अपने सद्भावी रङ्ग फेंके॥
सबके सब निहाल हो गये, रङ्गों में बहाल हो गये।
अपने आलम में मालामाल हो गये, लोगों में बेमिशाल हो गये॥
समस्याओं के हल सवाल हो गये, एक से बढ़कर एक कमाल हो गये॥
यह है रङ्गों की महिमा, जिसकी है अपार सीमा।
प्यार का दुलार का रङ्ग, अपकार से उपकार का रङ्ग।
दुश्मनों से दोस्ती का रङ्ग, नफरत से मोहब्बत का रङ्ग।
परन्तु, अब ऐसा लगता है—
नीका रङ्ग निढाल हो फीका दीख पड़ता है।
साठा के ऊपर पाठा होकर घाटा हो रहा है।
बिना रङ्ग के खाली पानी से गीला आटा हो रहा है।
पीढ़ी दर पीढ़ी बेरङ्गी हो रही है।
सीढ़ी पर सीढ़ी बेढङ्गी हो रही है।
पाश्चात्य रङ्गी हौआ के बावलेपन में बवाल रहे हैं।
रङ्ग बदलू गिरगिट का सा रङ्ग बदल रहे हैं॥
कितने रङ्गीले हो रहे हैं, कितने हठीले हो रहे हैं।
कितने पतीले हो रहे हैं, कितने गठीले हो रहे हैं॥

हर हर पर उग्रवाद आतङ्कवाद के काले रङ्ग की छाया है ।

चहुँ ओर अशान्ति आततायी विषैला उन्मादी रङ्ग भरमाया है ।।

निज स्वारथ की रङ्गीली पिचकारी छोड़ रहे हैं ।

दानवता की कसौटी पर मानवता को तोड़ रहे हैं ।।

घुसपैंठी घुस घुसकर अपना दुरङ्गी घौंसला बना रहे हैं ।

कुचक्री चाल कुचालों से बहुरङ्गी हौसला बढ़ा रहे हैं ।।

मानो अब रङ्ग में भङ्ग हो रहा है ।

आदमी; आदमी की जङ्ग में नङ्ग हो रहा है ।।

काश ! इस होली पर शुभ रङ्गों की ढाल बने ।

जन जन उस रङ्ग में रँगकर होली के हाल बने ।।

तो सबकी हर्षित होली हो ले, एक दूजे में रँग रस घोले ।

सत्ता पक्ष में सुनीति का रंग हो, विपक्ष में सुरीति का रँग हो ।

तो जनता ज़नार्दन स्वतः ही सुप्रीति के रङ्ग में रँग जायेगी ।

रँगीले रसीले बन परस्पर पल पल सङ्ग पायेगी ।।

फिर उस रंग से एक ऐसी सुदृढ़ शक्ति उभरेगी ।

अमङ्गल काले रँगको मिटाकर राष्ट्रीय रँग की भक्ति उबरेगी ।।

लाल पीले हरे नीले सप्तरंगी इन्द्रधनुषी रंगीन हो जाओ ।

दुश्मनों के दाँत खट्टे कर होली के होला बन संगीन हो जाओ ।।

अतः इस होली पर विविध रंगो की गुणवत्ता से प्रेरणा पावें ।

भारत के उत्थान हेतु 'मङ्गल' भविष्य की चेतना आवे ।।

बहुत उठा-पटक कर ली जहाँ के बङ्गल की ।

खामोशी से बैठूं यही कामना है 'मङ्गल' की ।।

ताकि मेरे मन को पूरा सुकून मिल जाये ।

जिन्दगी में सभी रङ्गों का जुनून मिट जाये ।।

सिंहावलोकन

भक्त के हृदय में प्रभु के धाम में निवास करने की और उनके नाम-यश का गुणगान करने की निष्काम अभिलाषा होती है तो उसके लिये वे किसी सौभाग्यशाली को निमित्त बनाकर भक्त के लिये सभी यथोचित साधन जुटाने, उसे पापमुक्त और मोक्ष तक प्रदान करने का कार्य भी स्वयं करते हैं। इसमें किसी प्रकार की कोई शंका नहीं है। वे भाव के भूखे हैं, जहाँ भाव है, वहीं भगवान हैं और अपने भक्तों की रक्षा का, उनके कुशलक्षेम का जिम्मा भी तो वे ले चुके हैं।

भगवान ने अपने वचनानुसार ही वृन्दावन में अनेक दीनहीन निराश्रित महिलाओं की सेवार्थ एक संस्था खोलने की प्रेरणा आज से लगभग 90 वर्ष पूर्व नवलगढ़ निवासी सेठ जानकीदास पाटोदिया के हृदय में दी। इसी परम भागवत भाव से वशीभूत होकर सेठ जानकीदास जी पाटोदिया ने अपना सर्वस्व उनके श्रीचरणों में अर्पित कर उनके नाम-संकीर्तन की अहर्निश ध्वनि से वातावरण को गुंजायमान करने की योजना बनाई। जब कोई शुभ कार्य होना होता है तो उसका सुयोग भी तदनुसार बनता जाता है।

इस योजना की कार्यरूप में परिणति सेठ जानकीदास जी पाटोदिया द्वारा आषाढ़ शुक्ला 2 सम्वत् 1973 तदनुसार सन् 1913 को श्री वृन्दावन भजनाश्रम नाम की संस्था की स्थापना की गई। इस संस्था के निमित्त सेठ जी ने अपना सर्वस्व धन जो उस समय लाखों रुपया था, तन और मन के साथ समर्पित कर दिया। वे सेवा की प्रतिमूर्ति बन गये और अपने सेवाभावी आचरण से अपने सगे-सम्बन्धियों को उस ओर दान देने को प्रेरित किया।

श्रीवृन्दावन धाम में रोपित, श्री भगवान नाम संकीर्तन की अनवरत सुमधुर ध्वनि के वातावरण से गुंजायमान और भक्तहृदयों का आनन्दप्रदायक यह पौधा कालगति से आबाद हो पल्लवित, पुष्पित और फलित होकर आज एक विशाल वट वृक्ष के रूप में अपनी शीतल छाया में हजारों निराश्रित माताओं को सम्मानपूर्वक जीवन-यापन करने का मंगलमय सुअवसर प्रदान कर निःस्वार्थ सेवा कार्य में सतत् संलग्न है।

अपने स्थापना वर्ष सम्वत् 1973 तदनुसार सन् 1913 से ही **श्रीवृन्दावन भजनाश्रम** अनवरत दीनहीन निराश्रित माताओं, भजनानन्दी साधुओं, अभ्यागतों की अन्न, वस्त्र, बना हुआ भोजन, नगदी एवं अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं से सहायता करता रहा है। संस्था जनहित एवं सार्वजनिक हित के कार्यों में कभी भी पीछे नहीं रही और न अब रहती है। कालान्तर में संस्थापक सभापति सेठ जानकीदास जी पाटोदिया की भावनाओं का समादर करते हुए सन् 1940 के बाद संस्था का नाम **श्री भगवान भजनाश्रम** कर दिया गया।

श्रीभगवान भजनाश्रम द्वारा होने वाली सेवायें

1. गरीब महिलाओं की सेवा- श्री भगवान भजनाश्रम एवं उसकी अन्य शाखाओं में कुल मिलाकर नित्य-प्रति प्रातःकाल एवं सायंकाल लगभग 1500 गरीब महिलाओं द्वारा **परम कल्याणकारी श्रीभगवान नाम का संकीर्तन हो रहा है।** इन्हें अन्न व नगदी नित्यप्रति दिये जाते हैं। समयानुसार ट्रस्ट एवं दानदाताओं द्वारा धोती, ब्लाउज, पेटीकोट आदि वितरित होते हैं। पाँच वर्ष में एक-एक रजाई वितरित होती है।

2. साधु-संत अभ्यागतों की सेवा- श्रीभगवान भजनाश्रम के अतिरिक्त इसकी विभिन्न शाखाओं गोवर्धन, राधाकुण्ड एवं चित्रकूट में नित्य प्रति लगभग

300-350 निराश्रित, गरीब बेसहारा माताओं एवं साधु-संतों को बैठाकर श्रद्धापूर्वक भरपेट भोजन कराया जाता है। इसके अतिरिक्त श्रीभगवान भजनाश्रम की बरसाना, मथुरा एवं गोकुल शाखाओं में ट्रस्ट एवं दानी महानुभावों द्वारा समय-समय पर अन्य सेवा होती रहती हैं।

3. रोगी-सेवा- श्रीधाम वृन्दावन के भजनाश्रम आगत रोगियों को योग्य चिकित्सक द्वारा निदान कराकर आयुर्वेद औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं।

4. जल-सेवा- श्रीभगवान भजनाश्रम एवं उ[illegible]की समस्त शाखाओं में भजन करने वाली माताओं [illegible]ी की प्याऊ संचालित हैं एवं अन्य अनेक [illegible] पर सार्वजनिक प्याऊ चल रही हैं।

5. पक्षी-सेवा- श्रीधाम वृन्दावन में नित्य प्रति दाना डाला जाता है, जिसको सहस्रों पक्षी चुगते हैं।

6. गरीब महिलाओं को अन्न-सेवा- श्रीभगवान भजनाश्रम में भगवन्नाम का संकीर्तन करने वाली विधवा, निराश्रित, वृद्ध, बेसहारा माताओं को नित्य नगदी दी जाती है एवं समय-समय पर वस्त्र इत्यादि भी दिये जाते हैं। इन माताओं के लिये सस्ते गल्ले की दुकान की भी सुविधा उपलब्ध करायी गयी है, जिसमें इन्हें रु० 2/- किलो गेहूं एवं रु० 3/- किलो चावल मिलता है।

- एक माता द्वारा एक महीने में अखण्ड नाम संकीर्तन पर रु० 1000/- की सेवा होती है।
- एक माता द्वारा एक साल तक अखण्ड नाम संकीर्तन पर रु० 11000/- की सेवा होती है।
- एक माता द्वारा दोनों समय आजीवन अखण्ड नाम संकीर्तन पर रु० 31000/- की सेवा होती है।

अतः अपनी ओर से भजन कराने के निमित्त उक्त हिसाब से दान देने की कृपा करें।

7. आवासीय सेवा- श्रीभगवान भजनाश्रम एवं इसके अन्तर्गत चलने वाले फोगला आश्रम, रमणरेती, वृन्दावन एवं वैश्य आश्रम, गांधी रोड, वृन्दावन में बाहर से आने वाले यात्रियों के लिये केवल रख-रखाव खर्च पर आवासीय व्यवस्था है, जिसमें अति आधुनिक कमरे, मीठा पानी, वृन्दावन के अनेक रमणीय स्थल के अतिनिकट तथा पार्किंग की उचित व्यवस्था उपलब्ध है।

8. जीर्णोद्धार- श्रीभगवान भजनाश्रम वृन्दावन एवं इसकी सभी शाखाओं के जीर्ण-शीर्ण भवनों, उसकी छतों एवं दीवारों का नवीनीकरण कराया जाना निराश्रित, गरीब, वृद्ध एवं बेसहारा माताओं की सुरक्षा के लिये बहुत आवश्यक हो गया है। दानी महानुभावों से निवेदन है कि इस सेवा के निमित्त दान देकर पुण्य के भागी बनें।

इस संस्था द्वारा श्रीभगवान नाम-प्रचार की दृष्टि से 'ऋषि-जीवन' नामक मासिक पत्र प्रकाशित होती है।

इस संस्था को दिये जाने वाले दान पर दाता को इन्कम टैक्स अधिनियम की धारा 80 जी के अनुसार इन्कम टैक्स की छूट मिलती है।

श्रीभगवान भजनाश्रम में हो रहे इस भगवन्नाम के निमित्त दान देने का खर्चा अब काफी हो गया है। मँहगाई के कारण खर्च बहुत बढ़ गया है। बैंकों में ब्याज 12% से 6% हो गयी है। जो ब्याज का रुपया आता था वह घटकर आधा रह गया है। विधवा, अबला, निराश्रित नारियों की सुचारु सेवा प्रबंधन में अब बहुत मुश्किल हो रही है। **अतः आप उदारमना दानी महांनुभावों से करबद्ध प्रार्थना है कि वे अपने विशाल हृदय से श्री भगवान भजनाश्रम को दान दें, जिससे 90 वर्षों से अधिक होने वाली यह सेवा अनवरत चलती रहे।**

अपने श्रद्धानुसार **श्रीभगवान भजनाश्रम, पत्थरपुरा, वृन्दावन-281121 के नाम ड्राफ्ट, मनीआर्डर, चैक द्वारा दान की राशि प्रेषित कर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।** वृन्दावन के किसी मन्दिर या संस्था से श्रीभगवान भजनाश्रम का धन सम्बन्धी कोई लेन-देन नहीं है।

❀❀